हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत'बाणभट्ट की आत्मकथा'में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विष्लेशण

सविता बंसल
एसिसटैंट प्रौफेसर
माता हरकी देवी महाविद्यालय,ओढ़ा
जिला–सिरसा।

साहित्य और विचार में घनिश्ठ सम्बंध है। साहित्य ही मनुश्य के मन और जीवन को सुन्दर संस्कारों की और प्रेरित करता है। साहित्यकार के मन में जो विचार उठते हैं वह उन्हीं विचारों को साहित्य में अभिव्यक्त करता है। साहित्यकार अतीत, वर्तमान, भविश्य तीनों में ही जीता है। उसके विचार तीनों में ही रमे रहते हैं। महान् साहित्यकार वही है जिसमें विचारों के मर्म को पहचानने और प्रकाषित करने की षक्ति सम्यक् मात्रा में रहती है। साहित्यकार साहित्य के माध्यम से ही हमारे अनुभवों और चेतना का विस्तार करता है। महान् साहित्यकार साहित्य में उत्कृश्ट विचारों की ही अभिव्यक्ति करता है। क्षीण या तुच्छ विचार साहित्य को दुर्बल बनाते हैं। सत विचारों की अभिव्यक्ति साहित्य को उत्कृश्टता एवं श्रेश्ठता ही प्रदान नहीं करती है बल्कि उसे कालजयी भी बनाती है। 'रामचरितमानस', 'कामायनी', 'प्रिय प्रवास', और 'गोदान' जैसी कालजयी कृतियाँ इस तथ्य के प्रमाण हैं। इन महान् ग्रंथों की विषिश्टता और सार्वभौमिकता इनमें निर्देषित विचारों की उस सम्पदा के कारण ही हैं। जो कि सदियों के बीत जाने पर भी क्षीण नहीं होगी, कभी भी अप्रासांगिक नहीं होगी। 'मुण्डकोपनिशद्' में अंगिरा ऋशि षौनक ऋशि से कहते हैं–' ''सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं। परमात्मा प्राप्ति के लिए तो सत्य अनिवार्य साधन हैं ही; जगत् में सब दूसरे सब कार्यों में भी अन्ततः सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं। जो लोग मिथ्या–भाशण, दम्भ और कपट से उन्नति की आषा रखते हैं, वे अन्त में बुरी तरह से निराष होते हैं। मिथ्या–भाशण और मिथ्या आचरणों में भी जो सत्य का आभास है, जिसके कारण दूसरे लोग उसे किसी अंष में सत्य मान लेते हैं, उसी से कुछ

क्षणिक लाभ सा हो जाता है। परन्तु उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। अन्त में सत्य सत्य ही रहता है और झूठ–झूठ ही। इसीलिए बुद्धिमान मनुश्य सत्य भाशण और सदाचार को ही अपनाते हैं झूठ को नहीं। – सत्यमेव जयति नानृंत

सत्येन पन्था विततो देवयानः।

येनाक्रमन्त्युशयो क्षाप्ताकाम

यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ।।[1]

'बाणभटट की आत्मकथा' की रचना द्विवेदी जी की प्रथम औपन्यासिक कृति है इसका प्रकाषन 1946 में हुआ जिसने कथा साहित्य में उन्हें उपन्यासकार के रूप में प्रतिश्ठित किया है। यह अत्यंत चर्चित बहु प्रषंसित रचना है। इसके प्रकाषन ने हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक उपन्यासों की परम्परा में नवीन अध्याय का प्रणयन किया है। यह उपन्यास इतिहास के एक काल खण्ड में व्याप्त मानव जीवन के समस्त आयामों को उनकी समग्रता में चित्रित करने के साथ आधुनिक सन्दर्भों को परम्परा और इतिहास– बोध के परिप्रेक्ष्य में नयी सांस्कृतिक अर्थवत्ता से मंडित करता है तथा मानवीय मूल्य की स्थापना करता है। इस प्रकार अतीत और वर्तमान के बीच स्थित अन्तराल को पाटने का सर्जनात्मक प्रयास इस उपन्यास में दीख पड़ता है। कथा और रचना–षिल्प की दृश्टि से यह एक मौलिक उद्भावना है जो उपन्यास की असीम सम्भावनाओं की ओर अंगुलि निर्देष करती है। पांडित्य ऐतिहासिकता प्रमाणिकता मूल्यबोध और कल्पना का सामंजस्य इसमें हुआ है। आलोचकों ने प्रस्तुत उपन्यास की भूरि–भूरि प्रषंसा की है। इसे नलिन विलोचन षर्मा ने 'साहित्यिक परकाय प्रवेष', देवराज उपाध्याय ने 'अतीत का पुननिर्माण' और भगवतषरण उपाध्याय ने 'निरन्ध्र इतिहास कथा' कहा है।''[2] लक्ष्मी सागर वार्श्णेय ने इस उपन्यास को ''सांस्कृतिक परम्पराओं का प्रत्यवलोकन'' के रूप

[1] ईषादि नौ उपनिशद्, (मुण्डकोपनिशद) – पृ0 243

[2] आलोचना – सं0 नामवर सिंह –अंक 31, अप्रैल जून– 1972, पृ0 108

में देखा है। तो राजमल बोरा ने ''ललित भावोच्छवासों की कथा की संज्ञा दी है।''[3] ''बाणभट्ट की आत्मकथा'' औपन्यासिक षिल्प में ढ़ली आत्मकथा है, जो डायरी षैली में बाण की जीवनी को उपस्थित करने के माध्यम से उसके युग का चित्रण करती है। यह आत्मकथा है इसीलिए कि सारा वृतांत बाण की जुबान में कहा गया है और यह जीवनी भी है क्योंकि डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा अंकित की गयी है। किन्तु यह मूलतः उपन्यास है। सम्पूर्ण कथा बीस उच्छवासों में विभक्त है, आरम्भ में वन्दना है। कथा के प्रारम्भ तथा अंत में क्रमषः 'कथामुख' व 'उपसंहार' की योजना कर दीदी की कहानी के साथ जोड़ी गयी है। इस उपन्यास के कथानक में कथा कौषल सर्वत्र दिखाई देता है। भट्ट भट्टिनी और निपुणिका के मुख्य कथा के साथ भैरव भैरवी, महामाया की कथा बहुत ही कौषल के साथ सम्बद्ध की गयी है। द्विवेदी जी ने तत्कालीन समाज का चित्रण प्रस्तुत करते हुए षाष्वत सत्य को पकड़ा है। द्विवेदी जी ने आत्मकथा में समग्र मानव मुक्ति प्रसंग की ससन्दर्भ व्याख्या की है। अकारण आरोपित सामाजिक स्तर भेद को मिटा डालने का संकल्प है— नर लोक से किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय की तलाष है। इसमें इतिहास की सांस्कृतिक यात्रा है। परम्पराओं का पुर्नमुल्यांकन है और मनुश्यता की स्थापना है। इन्हीं मूल्यों के स्थापन में द्विवेदी जी ने स्त्री पुरूश के प्रेम सम्बन्धों को इस उपन्यास में भावात्मक धरातल पर ले जाकर महामानव की स्थापना का प्रयास किया है। इस कृति में बाण की अलंकृत भाशा षैली, तत्कालीन समाज व संस्कृति का सजीव चित्र उभरा है। भारतीय संस्कृति एवं भारतीय की महिमा से आधुनिक पाठक को अवगत कराना ही इसका मुख्य उद्देष्य है।

बाणभट्ट की आत्मकथा में प्रमुख —पात्रों के अतिरिक्त प्रासंगिक —पात्र भी चरित्र की दृश्टि से महत्वपूर्ण है। इनके जीवन का चित्रण यद्यपि आंषिक है,

[3] हिन्दी उपन्यास – उपलब्धियाँ– लक्ष्मीसागर वार्श्णेय – पृ0 43

परन्तु है वे गरिमामय–इनमें प्रथम है सुचरिता की सास, अमितकान्त की माता, ममता की मर्ति वृद्धा। उसकी वैध्व्य–वर्धित वृद्धावस्था का एक मात्र सम्बल उसका पुत्र, सीता सी पत्नी सुचरिता को त्यागकर संन्यासी हो गया है। वह सास होकर भी मां है। सुचरिता का लालन–पालन वह पुत्री के समान करती है। वृद्धा में संकल्प षीलता है। वह अपनी पुत्र वधू को लेकर निकलती है और चित्रकूट में पुत्र को खोज लेती है। पुत्र को पाकर उसका मातृत्व पसीज जाता है। पुत्र द्वारा विराग की बातें सुनकर उसे डाटती हुई वह कहती है – "रटी रटाई भाशा छोड़ और इस स्वर्ग की अप्सरा सद्ष्य अपनी व्याहता को पहचान। तू ऐसी मणिकांचन प्रतिभा को छोड़कर तपस्या कर रहा है ?"[4] वृद्धा पुत्र के वैराग्यमार्ग को असत्य कहकर उसके पौयश को धिक्कारती है, पुत्र–वधू सुचरिता को पति के चरणों में प्राण–त्याग करने के लिए प्रेरित करती है और छाती पर कराघात कर पुत्र की गोद में अचेत होकर गिर जाती है। पुत्र पसीजता है। माता का उपचार करके पुत्र गुरू–आज्ञा पाकर सुचरिता को अपनाने का वचन देता है। माता के हृदय को इससे चोट पहुंचती है और उसका षक्तिरूप सचेत हो जाता है वह कहती है – "पाखण्ड है, वह ढोंगी जो माता से बढ़कर गुरू को मानता है।"[5] कठोर तपस्वी पुत्र के मुख से सुचरिता की करूणा और माता की अचेतावस्था पर द्रवित होने से 'माँ' सम्बोधन निकल पड़ता है। माँ षब्द सुनकर वृद्धा के षुश्क वक्ष से दुग्ध धारा बह पड़ती है। वृद्धा सुचरिता को हाथ बढ़ाने का आदेष देती है तथा दोनों का पुर्नपाणिग्रहण करा देती है। पुत्र को गुरू आज्ञा लेले हेतु भेज देती है परन्तु पुत्र के गुरू आश्रम से लौटने के पूर्व वह प्राण त्याग देती है।

[4] बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ0 276

[5] बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ0 153

उज्जयिनी की नगर वधू मदनश्री रूप–गर्विता और नृत्यनिपुण हैं। उसे चित्रकला का भी ज्ञान है। उसे अपनी सम्मोहन षक्ति पर गर्व है। उसमें "कुल–कन्या का षील और कवि की प्रतिभा है।"[6]

मदनश्री के महल में निपुणिका आश्रय पाती है। निपुणिका के प्रिय, देवतुल्य बाण पर अपना सम्मोहन तीर चलाने जाती है, परन्तु बाण पर मदनश्री का पुरूश बाण प्रभावहीन पर रहता है। लौटने पर वह निपुणिका से विजयी बाण की प्रषंसा करती है तो निपुणिका भी षंकामुक्त होकर गर्व का अनुभव करती है। महारानी राज्यश्री महामहिम हर्शवर्द्धन की बहन है और गृहवर्मा उनके पति हैं। आर्य राज्यश्री अत्यन्त सती–साध्वी स्त्री है। वे सौत को सिर पर रखकर पति परायण बनी रहती है। गृहवर्मा महामाया को ब्याह लाते हैं परन्तु राज्यश्री की पति–भक्ति में कोई अन्तर नहीं आता। महारानी राज्यश्री एक धर्म परायण स्त्री के रूप में चित्रित है। वे क्षमा के मूर्ति, सतीत्व का श्रृंगार और अभिजात्य गौरव से मुक्त है। कवि धावक व्यंग्य की भाशा में बाण से कहता है – "इस नगर में षुद्धषील व्यक्ति तीन ही है– महाराजधिराज श्री हर्शदेव, महरानी राज्यश्री और..।"[7]

निश्कर्श

कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में इस प्रष्न के लिए उठाया है और इसके उत्तर की ओर भी संकेत किया है। बाणभटट कहता है–''निपुणिका ने कल कहा था कि मेरी ही षपथ करके तुम सत्य–सत्य कहो आर्य, मेरा कौन सा ऐसा पाप चरित्र है जिसके कारण मैं आजीवन दुःख की निदारूण भटटी में जलती रही, क्या स्त्री होना ही मेरे अनर्थो की जड नही है? इन षब्दो में कितना मर्मातक दुख है वह मैं ही जानता हूँ। निपुणिका में कितने गुण है कि वह समाज और पूजा का पात्र हो सकती थी पर हुई नही। इतने दिनों में साथ हूँ उसके चरित्र में मैंने कोई

[6] बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ0 262

[7] बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ0 262

कालुश्य नही देखा। वह हँसमुख है। कृतज्ञ है, मोहिनी है, लीलावती है ये क्या दोश है? मेरा चित्त कहता है कि दोश किसी और वस्तु में है जो इन सारे सदगुणों को दुर्गुण कहकर व्याख्या करा देती है। वह वस्तु क्या है? निष्चय ही कोई बडा असत्य समाज के नाम पर घर बना बैठा है''[8] निष्चय ही द्विवेदी जी के यह विचार सामाजिक दोशों की ओर स्पश्ट संकेत करते है जोकि पाठक के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोडने में समर्थ है।

[8] बाणभट्ट की आत्मकथा – हजारी प्रसाद द्विवेदी – पृ0 194